

फरीसियों के साथ झगड़ा

(15:1-20)

अध्याय 15 में यीशु और उस की सेवकाई के प्रति लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रियाओं को प्रकाशमान करना जारी रहता है। इसका आरम्भ फरीसियों के साथ एक झगड़े से होता है, जो मनुष्यों की बनाई हुई परम्पराओं को यीशु और उसके चेलों पर थोपने का प्रयास कर रहे थे (15:1-20)। फिर फिनीके के तट पर एकांत में होने के बाद यीशु को एक अन्यजाति स्त्री मिली, जो अपनी बेटी की चंगाई चाहती थी। उस ने बड़ा अर्थात् न मिटने योग्य विश्वास होने के लिए उस की सराहना की (15:21-28)। अध्याय लोगों के बीच में यीशु के आश्चर्यकर्म करने के साथ समाप्त होता है (15:29-39)। उस की ओर से उनके बीमारों को चंगा करने से लोग इस्राएल के परमेश्वर की महिमा करने के लिए प्रेरित हुए। उन पर तरस खाकर यीशु ने अपने पीछे आने वाली लोगों की एक बड़ी भीड़ को, जिसमें चार हजार पुरुष थे, खिलाया भी।

मनुष्यों की बनाई परम्पराएं बनाम परमेश्वर की व्यवस्था (15:1-9)

‘तब यरूशलेम से कुछ फरीसी और शास्त्री यीशु के पास आकर कहने लगे, ²‘तेरे चले पूर्वजों की परम्पराओं को क्यों टालते हैं, वे बिना हाथ धोए रोटी खाते हैं?’ ³उस ने उनको उत्तर दिया, ‘तुम भी अपनी परम्पराओं के कारण परमेश्वर की आज्ञा क्यों टालते हो? ⁴‘क्योंकि परमेश्वर ने कहा है, ‘अपने पिता और अपनी माता का आदर करना,’ और ‘जो कोई पिता या माता को बुरा कहे, वह मार डाला जाए।’ ⁵पर तुम कहते हो कि यदि कोई अपने पिता या माता से कहे, ‘जो कुछ तुझे मुझ से लाभ पहुंच सकता था, वह परमेश्वर को भेंट चढ़ाया जा चुका है।’ ⁶तो वह अपने माता-पिता का आदर न करे, इस प्रकार तुमने अपनी परम्परा के कारण परमेश्वर का वचन टाल दिया। ⁷हे कपटियो, यशायाह ने तुम्हारे विषय में यह भविष्यवाणी ठीक ही की है:

⁸‘ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं,

पर उनका मन मुझ से दूर रहता है।

⁹और ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं,

क्योंकि मनुष्य की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं।’

आयत 1. यीशु की लगातार बढ़ती प्रसिद्धि से न केवल गलील में हेरोदेस अन्तिपास का ध्यान उस की ओर गया (14:1, 2) बल्कि यरूशलेम में यहूदी अगुओं का भी ध्यान उस की

ओर गया। अपनी सेवकाई के आरम्भ से ही यहूदी यीशु के अनुयायी थे, जो यरूशलेम में रहते थे (4:25)। अब तक वह पवित्र नगर में कम से कम दो बार गया था (यूहन्ना 2:13; 5:1)।

यरूशलेम के अगुवे फलस्तीन में यीशु की अलग-अलग गतिविधियों का पता लगाने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजते थे (देखें यूहन्ना 1:19-28)। पहले उस ने महसूल लेने वाले और पापियों के साथ खाने और सब्त की उनकी परम्पराओं को तोड़कर गलील के स्थानीय अगुओं को परेशानी में डाल दिया था (9:11, 34; 12:2, 14)। उस ने अपने पास लाए गए एक व्यक्ति के पापों को क्षमा करने की बात कहकर भी उन्हें ठोकर दिलाई (9:2, 3)। इसलिए यीशु की शिक्षा को पहले से खतरा मान रहे यरूशलेम के अगुओं ने उसे बदनाम करने के लिए गलील में एक दल भेजा। मरकुस के अनुसार एक पहला झगड़ा, जिसमें यीशु पर बालजबूल से पीड़ित होने का आरोप लगाया गया था, भी यरूशलेम के ही एक दल से आरम्भ हुआ था (मरकुस 3:22; देखें मत्ती 9:34; 12:24)। इन यहूदी अगुओं को यही उम्मीद थी कि उनके प्रयास पहले किए गए प्रयासों से अधिक सफल रहेंगे।

यरूशलेम से भेजे गए कुछ लोगों को शास्त्री बताया गया है। ये लोग अन्य कानूनी दस्तावेजों के साथ-साथ पवित्र शास्त्र के पुराने नियम की प्रतियां बनाते थे। पवित्र शास्त्र के साथ उनकी जान-पहचान के कारण वे इसके मुख्य व्याख्याकार बन गए थे (2:4; 5:20; 7:29)। उन्हें “व्यवस्थापक” (22:35) और “व्यवस्था के सिखाने वाले” (लूका 5:17) भी कहा जाता था। अपने व्यवसाय के कारण उन्हें व्यवस्था का अच्छा ज्ञान रखने वाले माना जाता था।

फरीसी (“अलग किए हुए”) यहूदियों के बीच में सबसे बड़ा सम्प्रदाय था। वे अपने समय के व्यवस्थापक थे (देखें 23:1-10), जो लिखित व्यवस्था और ज़बानी परम्पराओं दोनों को मानते थे। वे अन्तियोकुस एपीफेंस के समय यहूदियों में यूनानी संस्कृति को बढ़ावा देने के विरोध में खड़े हुए थे।¹ आम तौर पर वे सदूकियों की शिक्षाओं के उलट, पुनरुत्थान और आत्मा के अमर होने की शिक्षाओं को मानते थे। वे भविष्य में प्रतिफल और दण्ड की शिक्षा में भी विश्वास रखते थे (प्रेरितों 23:8; 3:7 पर टिप्पणियां देखें)। सभी फरीसी चाहे शास्त्री नहीं थे, परन्तु अधिकतर शास्त्री फरीसियों के दल के सदस्य होते ही थे।²

आयत 2. शास्त्रियों और फरीसियों का प्रश्न जानकारी की किसी विनती से बढ़कर आरोप अधिक था। एक और समय पर एक फरीसी ने हैरानी दिखाई, जब यीशु ने खाना खाने से पहले परम्परा के अनुसार हाथ नहीं धोए थे (लूका 11:38)।

रब्बी लोग अपने छात्रों के व्यवहार के लिए जिम्मेदार माने जाते थे, इसलिए यीशु के चेलों के कार्य के लिए यीशु की आलोचना की गई (देखें 9:14; 12:2)। बेशक चेलों का व्यवहार यीशु की शिक्षा और नमूने से सम्बन्धित ही था। उनका सामना एक पुरानी परम्परा से होने वाला था, इस कारण उनके काम की अधिक सम्भावना यही है कि सोच-समझकर या कमजोरी से नहीं, बल्कि वे जान-बूझकर किए गए काम थे, जो उन शिक्षाओं से निकले थे, जो यीशु ने उन्हें दी थीं। वे जो कुछ कर रहे थे, वह लापरवाही के कारण नहीं, बल्कि सिद्धांत के कारण कर रहे थे। कम से कम फरीसियों और शास्त्रियों का तर्क ऐसा ही होगा।³

फरीसी और शास्त्री न्याय करने के अपने मानक के रूप में **पूर्वजों की परम्पराओं** का इस्तेमाल कर रहे थे। “परम्परा” (*Paradosis*) उन शिक्षाओं की बात है, जो “सौंपी गई”

या “दी गई” थीं। “पूर्वजों की परम्पराएं” पवित्र शास्त्र की उन व्याख्याओं की ओर संकेत है जो पीढ़ी से पीढ़ी आगे दी गई थीं। अपने मन परिवर्तन से पूर्व, पौलुस का पालन-पोषण एक फरीसी के रूप में हुआ था और वह “अपने बाप-दादों की परम्पराओं” के जोश से भरा था (गलातियों 1:14; NIV)।

बाबुल की दासता के बाद यहूदी गुरुओं ने लोगों के प्रतिदिन के जीवन को संचालित करने के लिए कई प्रकार के नियम बना लिए थे। इन नियमों का उद्देश्य व्यवस्था की और व्याख्या करना था। वे यहूदियों को उनके पतन का कारण बनने वाले पिछले पापों को दोहराने से रोकने का काम भी करते थे। वे “व्यवस्था के इर्द-गिर्द बाड़” के रूप में काम करने के इरादे से बनाए गए थे।¹ सदियों से ज़बानी रूप में दिए जाने के कारण अन्त में वे मिशनाह में लिख दिए गए थे। रब्बी लोग दावा करते थे कि मूसा ने आरम्भ में सौनै पर्वत पर यह व्यवस्था पाई थी और इसे इस्राएल के प्राचीनों के द्वारा उन्हें आगे दे दिया था।²

तौभी सब यहूदी इन परम्पराओं को नहीं मानते थे। शास्त्रियों और फरीसियों की बहुसंख्या इन परम्पराओं को लिखित व्यवस्था की तरह ही मानती थी। परन्तु सदूकी इन्हें तुकारते थे और कुछ “देशवासी” जो साधारण लोग थे, उनके साथ नहीं चलते थे।³ जोसेफस ने लिखा है:

फरीसियों ने अपने पूर्वजों से कई बातें लेकर लोगों को दे दी हैं, जो कि मूसा की व्यवस्था में नहीं लिखी गई; और इस कारण से सदूकी उन्हें तुकारते हैं और कहते हैं कि हमें उन्हें अवश्य माननीय बातों का ही सम्मान करना चाहिए, जो *लिखित वचन* में हैं, परन्तु उन्हें नहीं मानना चाहिए जो *हमारे पूर्वजों की परम्परा* से ली गई हैं; और इन बातों के सम्बन्ध में बड़े झगड़े और अन्तर यही है, जबकि सदूकी धनवानों को छोड़ और किसी को मना नहीं पाते ..., परन्तु फरीसियों की ओर लोगों की भीड़ है।⁴

कुछ समय के बाद, मनुष्यों की बनाई ये परम्पराएं परमेश्वर के वचन के ऊपर हावी होने लगीं। बाद के स्रोतों से पता चलता है कि मौखिक व्यवस्था लिखित व्यवस्था के ऊपर हावी थी।⁵

प्रभु के चेलों के विरुद्ध अपने आरोप में, शास्त्रियों और फरीसियों ने इस तथ्य को छिपाने की कोशिश नहीं की कि उनकी मौखिक परम्परा को ही तोड़ा गया था न कि व्यवस्था की लिखित आज्ञा को। उन्होंने खाने से पहले **हाथ न धोने** के लिए चेलों की आलोचना नहीं की। यह आरोप व्यक्तिगत साफ़-सफ़ाई के लिए उनकी चिन्ता के कारण नहीं था। इसके विपरीत यह औपचारिक शुद्धता के सम्बन्ध में बनी परम्पराओं से निकला था। प्रभु के आलोचकों का तर्क इस प्रकार से दिया: व्यक्ति के लिए दिन के कामकाज में हाथों से कोई अशुद्ध चीज़ पकड़ी गई हो सकती है। जब वह खाने के समय खाने के लिए अपनी **रोटी** को उठाता है तो वह अशुद्ध हो जाती है। फिर, जब वह रोटी को खाता है, तो उस का पूरा शरीर अशुद्ध हो जाता है। ऐसी औपचारिक अशुद्धता से बचने के लिए उसे खाना खाने से पहले अपने हाथ धो लेने आवश्यक हैं (देखें मरकुस 7:3, 4)।⁶

विषय की गम्भीरता को दिखाते हुए मिशनाह में एक पूरा निबन्ध, *Yadaim* (“हाथ”) हाथ धोने पर ही है। इसमें उन बातों की चर्चा की गई है जिनसे हाथ अशुद्ध होते हैं, जिन बर्तनों का इस्तेमाल धोने के लिए किया जा सकता है, जैसा और जितना पानी शुद्धिकरण के लिए चाहिए

और धोने का सही ढंग। उदाहरण के लिए इसमें कहा गया है कि हाथों को उंगलियां ऊपर की ओर करके रखना, और पानी हाथों पर ऊपर से कलाई तक डालना। इसके बाद पानी उंगलियां नीचे की ओर करके हाथों से डालना।¹⁰

यह कहा जा सकता है कि शास्त्रियों और फरीसियों ने उन नियमों को जो विशेषकर इस्राएल के याजकों के लिए दिए गए थे, लेकर इन्हें आम लोगों के हिसाब से बना दिया। निर्गमन 30:17-21 के अनुसार परमेश्वर ने याजकों के लिए बलिदान के संस्कारों में भाग लेने से पूर्व पीतल की हौदी में अपने हाथ और पांव धोना ठहराया था। फरीसियों का मानना था कि हाथों के औपचारिक रूप में धोने से साधारण लोग “प्रतिदिन का भोजन ऐसे खाएंगे, जैसे यह मन्दिर की वेदी में परमेश्वर को चढ़ाया गया हो।”¹¹ अन्य ऐसी रीतियों के साथ इस रीति से परमेश्वर के सामने उनकी पवित्रता सुनिश्चित होनी थी।

आयत 3. यहूदी परम्परा और मूसा की मौखिक व्यवस्था और सौने पहाड़ से जोड़े जाने के बावजूद स्पष्टतया यीशु ने इसे अधिकारात्मक नहीं माना। परन्तु उस ने औपचारिक हाथ धोने के मुद्दे पर बहस नहीं की। इसके बजाय उस ने अपना ही आरोप लगाया। रब्बियों की अच्छी शैली में, यीशु ने उनके प्रश्न का उत्तर एक और प्रश्न के साथ दिया, “**तुम भी अपनी परम्पराओं के कारण क्यों परमेश्वर की आज्ञा टालते हो?**” यूनानी धर्मशास्त्र में दिए गए जोर को “तुम भी अपनी” के अनुवाद में दिखाया गया है, जिसमें यीशु उलटा फरीसियों की ओर ही उंगली कर रहा था। उसके चले चाहे पूर्वजों की परम्पराओं को तोड़ रहे थे, पर फरीसी इसे परमेश्वर की आज्ञा तोड़ना बता रहे थे! इससे भी बढ़कर वे अपनी मौखिक परम्पराओं को ऐसे दिखा रहे थे, जैसे वे परमेश्वर के लिखित प्रकाशन से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

आयत 4. अपनी बात को और बेहतर ढंग से समझाने के लिए यीशु ने शास्त्रियों और फरीसियों को उनकी ही प्रथा का उदाहरण दिया। वे पांचवीं आज्ञा को तोड़ रहे थे, जिसमें **परमेश्वर ने कहा है, “अपने पिता और अपनी माता का आदर करना”** (निर्गमन 20:12; देखें मत्ती 19:19; इफिसियों 6:2)। इस आज्ञा में यीशु ने एक और आज्ञा जोड़ दी, वह जिसमें माता-पिता का अपमान करने का दण्ड भी था: “**जो कोई पिता या माता को बुरा कहे, वह मार डाला जाए**” (निर्गमन 21:17; लैव्यव्यवस्था 20:9)।

व्यवस्था में इतना विस्तार से नहीं बताया गया था जो “आदर” शब्द में समाया हुआ था। परन्तु स्पष्टतया इसमें आर्थिक सहायता की बात थी (देखें 1 तीमुथियुस 5:4)। मसीह के समय में यहूदियों में किसी प्रकार का कोई सामाजिक भलाई का प्रबन्ध नहीं था। यह समझा जाता था कि जब माता-पिता इतने बूढ़े हो जाएं कि वे स्वयं कुछ न कमा सकें तो बच्चों का फर्ज है कि वे उनके लिए उपाय करें। रब्बियों की एक परम्परा कहती है कि अपने पिता को खाने और पीने के लिए, पहनने के लिए, ढकने के लिए, अन्दर बाहर ले जाने के लिए और उस का मुंह, हाथ, और पांव धोने के लिए प्रबन्ध करने के जिम्मेदारी बेटे की है।¹² एक और परम्परा है जिसमें कहा जाता है कि बेटा अपने पिता की सहायता करने को बाध्य हैं चाहे इसके लिए उसे भीख भी मांगनी पड़े।¹³ आयतें 5 और 6 में प्रभु ने स्पष्ट रूप में “अपने पिता और अपनी माता का आदर” करने की आज्ञा का अर्थ न केवल उनसे प्रेम करने और उन्हें आदर देने के रूप में बल्कि आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता देने के रूप में भी किया।

आयतें 5, 6. पर तुम कहते हो वाक्यांश आयत 4 में “क्योंकि परमेश्वर ने कहा है” वाक्यांश से उलट है। इन तीन शब्दों में, यीशु ने फरीसियों को सीधे-सीधे परमेश्वर का विरोध करने वाले बता दिया। परमेश्वर ने तो “अपने पिता और अपनी माता का आदर” करने की आज्ञा दी थी, परन्तु शपथों के विषय में अपने निर्णयों में फरीसियों ने यह नियम बना लिया था, “वह अपने पिता या अपनी माता का आदर न करे।”

अपने माता-पिता की सहायता करने की जिम्मेदारी से बचने के लिए, अवज्ञाकारी यहूदी शपथ खाता, “**जो कुछ तुझे मुझ से लाभ पहुंच सकता था, वह परमेश्वर को भेंट चढ़ाया जा चुका।**” यूनानी धर्मशास्त्र में संज्ञा शब्द “भेंट” (*dōron*) है, जो ऐसा शब्द है कि इसका इस्तेमाल आम तौर पर मन्दिर में किए जाने वाले बलिदानों और भेंटों के लिए किया जाता था (5:23, 24; 8:4; 23:18, 19; लूका 21:1, 4)। मरकुस में *dōron* के साथ “कुरबान” (*korban*) शब्द का इस्तेमाल हुआ है (मरकुस 7:11)। यह तकनीकी शब्द, इब्रानी भाषा से यूनानी में बदला गया (और फिर अंग्रेजी और हिन्दी में), किसी ऐसी चीज़ की बात करता है जिसकी परमेश्वर को दान के रूप में मन्त मानी गई हो। इससे जुड़ा संज्ञा शब्द *korbanas* “मन्दिर के भण्डार” के लिए इस्तेमाल हुआ है (27:6)।

यहूदी लोग आमतौर पर कुछ चीज़ों को “कुरबान” के रूप में मानते थे। परन्तु वे चीज़ें आवश्यक नहीं था कि मन्दिर के भण्डार के लिए दी जातीं, कम से कम उसके स्वामी के जीवनकाल में। ऐसी शपथें उन चीज़ों को सांसारिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल की मनाही करती थीं, चाहे वह माता-पिता की सहायता करना ही क्यों न हो। इस मामले में, कोई (शायद क्रोध में) जानबूझकर उन चीज़ों को परमेश्वर को अर्पित कर देता, जिन्हें बुजुर्ग माता-पिता की सहायता के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए था। मिशनाह में एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जिसने अपने पिता को उससे किसी भी प्रकार का लाभ मिलने में सहायता बनने वाले लाभ से रोकने के लिए ऐसी मन्त मांगी।¹⁴

मन्तें पूरी करनी आवश्यक होती थीं (गिनती 30:2; व्यवस्थाविवरण 23:21-23), इस कारण फरीसियों ने शपथ तोड़ने वाले लोगों पर (अर्थात् मनुष्य की परम्परा की शपथ) अपने जरूरतमंद माता-पिता की सहायता के लिए (जिसकी आज्ञा परमेश्वर ने दी) गम्भीर पाप करने का आरोप लगाया होगा।¹⁵ समय बीतने पर ऐसा लगता है कि इस मामले पर सोच बदल गई। मिशनाह¹⁶ यह संकेत देते हुए लगता है कि यदि *कुरबान* किसी के माता-पिता के प्रति फर्ज के आड़े आता है, तो शपथ रद्द हो जाती है।¹⁷

यीशु ने कहा कि फरीसियों ने अपनी परम्परा के द्वारा परमेश्वर का वचन टाल दिया। “टाल दिया” (*akuroō*) एक कानूनी शब्द है, जिसका अर्थ “रद्द करना” है। AB में यीशु के शब्दों का अनुवाद इस प्रकार है: “तुमने परमेश्वर के वचन को इसके जोर और अधिकार को छीनकर इसे किसी काम का न बनने देकर, एक ओर कर दिया।”

आयत 7. यीशु ने इन यहूदी अगुओं को **कपटियों** कहा (6:2, 5 पर टिप्पणियां देखें)। वे परमेश्वर की व्यवस्था को बनाए रखने का दिखावा करते थे पर जबकि वास्तविकता में वह इसके विरुद्ध थे। वे शपथों को बनाए रखने का समर्थन करते थे, जो वास्तव में परमेश्वर को महिमा देने के लिए बनाई गई थीं। परन्तु माता-पिता की सहायता करने से इनकार करने वाली

शपथें स्वार्थी उद्देश्यों से बनाई गई थीं। ऐसी शपथों को बनाए रखकर वे परमेश्वर और उस की व्यवस्था का अपमान कर रहे थे।

यीशु ने यशायाह 29:13 से एक हवाला देते हुए उत्तर दिया। उस हवाले की उस की भूमिका डांट के साथ चुभने वाली थी: “यशायाह तुम्हारे विषय में यह भविष्यवाणी ठीक ही की है।” यशायाह ने चाहे मूल में अपने ही समय के इस्त्राएलियों के लिए यह कहा था, पर परमेश्वर की प्रेरणा से दिए गए उसके शब्द पहली सदी के यहूदियों पर भी लागू होते थे (देखें प्रेरितों 28:25-27), जैसा कि यीशु ने संकेत दिया। विलियम हैंड्रिक्स ने टिप्पणी की है, “अन्य शब्दों में, इतिहास अपने आपको दोहरा रहा था।”¹⁸

आयत 8. “ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है।” यीशु ने पुराने नियम के इस हवाले का इस्तेमाल करते हुए इसे दोनों में पाए जाने वाले शब्द “आदर” के द्वारा इस घटना से जोड़ दिया। आरोप यह था कि उसके चेले परम्परा का आदर नहीं करते। यीशु उन्हें अपने माता-पिता का आदर करने की आज्ञा की ओर ले गया। परमेश्वर ने आज्ञा दी थी कि माता-पिता का उनके बच्चों के द्वारा आदर किया जाए। फरीसी और शास्त्री अपनी परम्परा का आदर करते थे पर माता-पिता का आदर केवल दिखावे के लिए था (देखें 15:4)।¹⁹ सच्चा धर्म उस साफ मन में से निकलता है जो परमेश्वर को और सब बातों से बढ़कर प्रेम करता है (व्यवस्थाविवरण 6:5; मत्ती 22:37, 38)।

आयत 9. “और ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्य की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं।” “व्यर्थ” (*matên*) का अर्थ है “बेकार” या “किसी काम का नहीं।” मूर्तियों की पूजा किए जाने को ऐसी ही भाषा में दिखाया गया है (“व्यर्थ वस्तुओं”; प्रेरितों 14:15)। इसके अलावा मसीही व्यक्ति जो अपनी जीभ पर काबू नहीं रखता उसके धर्म को “व्यर्थ” बताया गया है (याकूब 1:26)।

इस आयत की भाषा आधुनिक गलतफहमी को सामने लाती है कि परमेश्वर उस की किसी भी प्रकार से की जाने वाली उपासना को स्वीकार कर लेता है। आरम्भ से उस ने अपने लोगों को चाहा कि वे सच्चे मन से उसके नियमों के अनुसार उस की आराधना करें (उत्पत्ति 4:1-8)।

यहां पर यीशु ने शास्त्रियों और फरीसियों को परमेश्वर की व्यवस्था की जगह मनुष्यों की परम्पराओं को देने के लिए डांट लगाई। उनके धर्म की व्यर्थता आम लोगों को करने के लिए दी जाने वाली उनकी शिक्षा से स्पष्ट थी। यूनानी भाषा में “धर्मोपदेश करके सिखाते” (*didaskontes didaskalias*) के लिए वाक्यांश में दोहराव है और इसका अक्षरशः अनुवाद “शिक्षाएं देते” हो सकता है। परम्पराओं में नियम बनकर परमेश्वर की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति होती है, पर सभी परम्पराएं बुरी नहीं होतीं।

इस घटना में यीशु हर परम्परा को गलत नहीं कह रहा था। उस ने आराधनालय में आराधना के लिए जाने, भोजन से पहले धन्यवाद करने और फसह के भोज पर हलल के भजन गाने (113-118) जैसी परम्पराओं का पालन किया। परन्तु वह परम्पराओं को व्यवस्था के रूप में मनवाने और परमेश्वर के नियमों के बराबर रखने का खण्डन कर रहा था।²⁰

असली अशुद्धता (15:10-20)

¹⁰तब उस ने लोगों को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, “सुनो, और समझो: ¹¹जो मुंह में जाता है, वह मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता है, पर जो मुंह से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है।”

¹²तब चेलों ने आकर उससे कहा, “क्या तू जानता है कि फरीसियों ने यह वचन सुनकर ठोकर खाई है?” ¹³उस ने उत्तर दिया, “हर पौधा जो मेरे स्वर्गीय पिता ने नहीं लगाया, उखाड़ा जाएगा। ¹⁴उनको जाने दो; वे अंधे मार्गदर्शक हैं और अंधा यदि अंधे को मार्ग दिखाए, तो दोनों गड़हे में गिर पड़ेंगे।”

¹⁵यह सुनकर पतरस ने उससे कहा, “यह दृष्टांत हमें समझा दे।” ¹⁶उस ने कहा, “क्या तुम भी अब तक नासमझ हो? ¹⁷क्या तुम नहीं जानते कि जो कुछ मुंह में जाता, वह पेट में पड़ता है और सण्डास में निकल जाता है? ¹⁸पर जो कुछ मुंह से निकलता है, वह मन से निकलता है, और वही मनुष्य को अशुद्ध करता है। ¹⁹क्योंकि बुरे विचार, हत्या, परस्त्रीगमन, व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा मन ही से निकलती हैं। ²⁰ये ही हैं जो मनुष्य को अशुद्ध करती हैं, परन्तु हाथ बिना धोए भोजन करना मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता।”

मत्ती के इस भाग (15:1-20) के आगे बढ़ने पर यीशु के सुनने वाले लगातार बदलते रहते हैं। पहले उस का झगड़ा मनुष्यों की परम्पराओं के सम्बन्ध में यहूदी अगुओं के साथ हुआ (15:1-9)। फिर उस ने सचमुच की आत्मिक अशुद्धता के सम्बन्ध में भीड़ के लोगों से बात की (15:10, 11)। अन्त में उस ने अपनी बात और विस्तार से अपने चेलों को समझाई (15:12-20)।

आयत 10. यीशु के आस पास के लोगों में बहुत से लोग 14:34-36 वाले लोगों में से होंगे, जिन्होंने उसके आश्चर्यकर्मों को देखा था या अपने प्रियजनों को चंगा होने के लिए उसके पास लाए थे। उन्होंने स्पष्टतया पास खड़े होकर यीशु और यहूदी अगुओं के बीच के टकराव को देखा। उसने जो कुछ इन अगुओं से अभी-अभी कहा था उसे और विस्तार से समझाने के लिए उन्हें और पास बुलाया। यीशु ने केवल परम्परा की चौड़ी छतरी के सम्बन्ध में उनके शब्द पर ही बात की थी (15:2क)। इस संदर्भ में, उस ने औपचारिक रूप में हाथ धोने के मुद्दे को अधिक विशेष ढंग से लिया (15:2ख)।

सुनो, और समझो अभिव्यक्ति यीशु के यह कहने का ढंग था कि “जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उस पर ध्यान दो” (देखें 11:15; 13:9, 43)। उस की बातें खाना खाने से पहले औपचारिक रूप में हाथ धोने की युगों पुरानी परम्परा के बिल्कुल उलट थीं, इस कारण उनमें से बहुतों के लिए उस की शिक्षा को समझ पाना या स्वीकार करना कठिन होना था।

आयत 11. यीशु ने कहा, “जो मुंह में जाता है, वह मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता है, पर जो मुंह से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है।” इस “दृष्टांत” (15:15) से प्रभु ने समझाया कि व्यक्ति परमेश्वर की दृष्टि में कैसे अशुद्ध होता है। उस ने शास्त्रियों और फरीसियों की परम्परागत स्थिति को नकार दिया, जिसमें *औपचारिक रूप में अशुद्ध होने की बात पर जोर*

दिया जाता था। उस की शिक्षा थी कि मनुष्य को कोई भी ऐसी बात जो उसके मुंह में जाती आत्मिक रूप में अशुद्ध नहीं करेगी। पवित्रता बाहर से नहीं आती, बल्कि यह अन्दर से ही आती और जाती है (23:25-28)। बुराई मन में से ही निकलती है और बुराई व्यक्ति के बोलचाल में अपना रास्ता ढूंढ़ लेती है (12:34, 35; 15:19, 20; इफिसियों 4:29; याकूब 3:6)।

आयत 12. इस बात से परेशान कि फरीसियों ने यह वचन सुनकर ठोकर खाई है, चले यीशु के पास आए। “ठोकर खाई” के लिए यूनानी शब्द (*skandalizō*) का अर्थ बार बार “पाप करवाना” है। परन्तु यहां पर यह शब्द कर्मवाच्य है और इसका अर्थ “पेशान होना,” “स्तब्ध” या “क्रोधित” है। पिछली आयतों में कही गई यीशु की कई बातें चाहे फरीसियों के लिए ठोकर थीं, परन्तु संदर्भ के अनुसार “यह वचन” आयत 11 की ही बात है। यह इस बात का संदेश देता है कि औपचारिक रूप में हाथ धोने का यदि, कोई आत्मिक महत्त्व था, तो वह किसी काम का नहीं था। ऐसा करना जो उन्हें गर्व का बड़ा अहसास देता था, समय और ऊर्जा की बर्बादी थी। उनके धर्म में मन की शुद्धता के विपरीत बाहरी संस्कार पाए जाते थे। उनकी परम्पराओं को नकारकर यीशु फरीसियों के अधिकार को ही नकार रहा था।

चेलों ने इन अगुओं की प्रतिक्रिया पर चिन्तित होकर अपनी आत्मिक परिपक्वता की कमी को दिखाया। यीशु को राजनैतिक सुधारों की परवाह नहीं थी, बल्कि उसे सच्चाई की परवाह थी। उसे मालूम था कि उस की बातों से फरीसियों को ठोकर लगेगी। सच्चाई कई बार कड़वी लगती है; वास्तव में आम तौर पर इससे लोगों को ठोकर ही लगती है। सच्चाई को प्रेम से बताया जाना चाहिए (इफिसियों 4:15), परन्तु उद्धार की सच्चाई बताई जानी आवश्यक है, नहीं तो बहुत बड़ी हानि होती है (1 तीमुथियुस 2:4)।

आयत 13. यीशु ने चेलों की चिन्ता का उत्तर यह कहते हुए दिया, “हर पौधा जो मेरे स्वर्गीय पिता ने नहीं लगाया, उखाड़ा जाएगा।” इस बात का सार है कि जो कुछ पिता की ओर से नहीं आता, वह सदा तक नहीं रहेगा। “मेरे स्वर्गीय पिता” वाक्यांश यीशु और पिता के निकट सम्बन्ध को दिखाता है (देखें 18:35)। इसी सम्बन्ध के कारण, यीशु यहूदी अगुओं के सम्बन्ध में अधिकार से बोल पाया (देखें 7:28, 29)।

“हर पौधा” फरीसियों द्वारा सिखाई गई गलत शिक्षाएं हो सकती हैं। मनुष्यों की बनाई ये परम्पराएं वे पौधे थे, जिन्हें परमेश्वर ने नहीं लगाया था। उन्हें परमेश्वर की सच्चाई के द्वारा जड़ से उखाड़ा जाना था, क्योंकि उस की सच्चाई सदा तक रहती है। वह अनन्त सच्चाई यीशु की सेवकाई के द्वारा प्रगट की जा रही थी।

एक और सम्भावना है कि “हर पौधा” फरीसियों को कहा गया होगा, जो परमेश्वर के वचन की जगह अपनी परम्पराओं को दे रहे थे। पुराने नियम में, परमेश्वर के लोगों को उस का “पौधा” या उसके द्वारा “लगाया जाने वाला” कहा गया है (यशायाह 5:2, 7; 60:21; 61:3; यहैजकेल 17:22, 23)। पौधा लगाने और उखाड़ने का रूपक विशेषकर यरूशलेम में प्रसिद्ध है (यिर्मयाह 1:10; 2:21; 11:17; 12:2; 18:7, 9; 24:6; 31:28; 32:41; 42:10; 45:4)। यदि “हर पौधा” फरीसियों को कहा गया तो “उखाड़ा” जाने की बात उनके न्याय की है (देखें 3:7-12; 13:24-30, 36-43)। दोनों ही विचार इस अर्थ में पाए जाते हैं।

आयत 14. अपने चेलों के लिए यीशु की चेतावनी यह थी, “उनको जाने दो।” चेलों

को फरीसियों के रुतबे या रुचियों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं थी (15:12)। उन्हें इन धार्मिक लोगों से दूर ही रहना आवश्यक था, क्योंकि उनके पास उन्हें देने के लिए कुछ नहीं था। बाद में यीशु ने चेलों को “फरीसियों के खमीर” अर्थात् उनकी शिक्षाओं से सावधान रहने की चेतावनी दी (16:11, 12)। उसके उन्हें ये चेतावनियां देने की आवश्यकता यहूदी लोगों पर फरीसियों के जबर्दस्त प्रभाव का एक संकेत है (देखें यूहन्ना 7:13; 9:22; 12:42; 19:38, 39)।

फरीसी लोग अपने आपको “अंधे को मार्ग दिखाने वाले” अर्थात् आत्मिक अंधकार में पड़े लोगों को रौशनी देने वाले मानते थे (रोमियों 2:19)। यीशु ने इसी दावे का इस्तेमाल यह कहने के लिए किया कि वे **अंधे को मार्ग दिखाने वाले अंधे** थे (23:16, 24; देखें यूहन्ना 9:39, 40)। पहली सदी के फलस्तीन में आंखों की बीमारियां आम पाई जाती थीं। इस कारण अंधे भिखारी आम होते थे¹ जिस कारण इन लोगों को एक से दूसरी जगह ले जाने के लिए दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ी थी। परन्तु एक अंधे का दूसरे अंधे को रास्ता दिखाना बहुत बड़ी त्रासदी था, क्योंकि **दोनों ही गड़हे में गिर पड़ेंगे** (देखें लूका 6:39)। फरीसी स्वयं सच्चाई को नहीं जानते थे और वे दूसरों को विनाश के मार्ग में ले जा रहे थे। कइयों का मानना है कि यदि कोई किसी झूठी शिक्षा देने वाले के पीछे चलता है, तो शिक्षा देने वाला ही दोषी ठहरेगा, न कि उसके पीछे चलने वाले। यीशु ने दिखाया कि सिखाने वाले और उसके पीछे चलने वाले दोनों की जिम्मेदारी सच्चाई को ग्रहण करना है।

आयत 15. पतरस ने उससे कहा, “ये दृष्टांत हमें समझा दे।” कई अवसरों पर पतरस चेलों के प्रवक्ता का काम करता था (14:28 पर टिप्पणियां देखें)। क्या पतरस उखाड़े जाने वाले रूपक की बात कर रहा था (15:13) या फिर अंधे की अगुआई करने की (15:14)? यीशु के उत्तर (15:16-20) से संकेत मिलता है कि पतरस पिछली एक बात की ओर ध्यान दिला रहा था: “जो मुंह में जाता है, वह मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता है, पर जो मुंह से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है” (15:11)। यहां “दृष्टांत” (*parabolē*) जटिल कहावत के लिए है। यीशु आम तौर पर चेलों को अपने दृष्टांतों का अर्थ बता देता था, जब वे अकेले होते थे (13:36; मरकुस 4:34)।

आयत 16. प्रभु ने अपने चेलों से कहा, “**क्या तुम भी अब तक नासमझ हो?**” वे इतने समय से यीशु की जीवन शैली को देखते और उस की शिक्षा को सुनते हुए, इतने समय से उसके साथ थे, इस कारण उनसे समझ में अधिक बढ़ने की उम्मीद करना स्वाभाविक था। क्या हम यीशु के प्रश्न को आत्मिक परख की चेलों की कमी के लिए जोरदार डांट के रूप में देखें या केवल हल्की सी डांट के रूप में? उसे निराशा चाहे जितनी भी हुई पर यीशु ने धीरज से उन्हें दृष्टांत का अर्थ समझाया।

आयत 17. आरम्भ में यीशु ने दृष्टांत की पहली पंक्ति का अर्थ बताया था: “जो मुंह में जाता है, वह मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता” (15:11क)। अब उस ने उनसे पूछा, “**क्या तुम नहीं जानते कि जो कुछ मुंह में जाता, वह पेट में पड़ता है और सण्डास में निकल जाता है?**” औपचारिक शुद्धता के लिए फरीसियों की हाथ धोने की परम्परा केवल शरीर से सम्बन्धित थी। बिना धुले हुए हाथों से छुआ गया खाना “मुंह में” जाता है, “पेट” में पच जाता है और

फिर मल के रूप में “निकल जाता है।” यूनानी धर्मशास्त्र कहता है कि यह (*aphedrōn*) अर्थात् “पखाना” (JNT) में चला जाता है। प्रभु इस बात पर जोर दे रहा था कि बिना हाथ धोए खाया हुआ खाना व्यक्ति के मन को प्रभावित नहीं करता (मरकुस 7:18)।

आयत 18. अपनी अगली टिप्पणी के साथ यीशु दृष्टांत की दूसरी पंक्ति में चला गया: “जो कुछ मुंह से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है” (15:11ख)। उस ने जोर दिया कि बोले गए बोल **मन से निकलते हैं** और आत्मिक अशुद्धता के कारण यही बनते हैं। “मन” (*kardia*) व्यक्ति के अंदरूनी जीवन के केन्द्र को दर्शाता है; यह व्यक्ति की भावनाओं, विचार, विवेक और इच्छा का प्रतीक है (5:8; 6:21 पर टिप्पणियां देखें)। मत्ती में पहले यीशु ने फरीसियों को इन शब्दों के साथ डांटा था: “हे सांप के बच्चों, तुम बुरे होकर कैसे अच्छी बातें कह सकते हो? क्योंकि जो मन में है, वही मुंह पर आता है” (12:34)। जब किसी का मन शुद्ध हो, तो मुंह से निकलने वाली बातें शुद्ध ही होंगी। जब किसी का मन बुरा हो तो उसके मुंह से निकलने वाली बातें बुरी ही होंगी।

आयत 19. यीशु ने बुराई की और किस्मों को बताते हुए जो **मन में बनती हैं**, अपनी बात जारी रखी। इस सूची में **बुरे विचार** की बात करने को छोड़ उस ने मनुष्यों के बीच सम्बन्ध से सम्बन्धित दस आज्ञाओं वाले दूसरे भाग **हत्या, परस्त्रीगमन, व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही, निन्दा** (निर्गमन 20:13-16) की बात की।²² यही पाप नये नियम के अन्य वचनों में भी सामने लाए गए हैं (1 कुरिन्थियों 6:9, 10; प्रकाशितवाक्य 9:21; 21:8; 22:15)। यीशु ने पहले ही पहाड़ी उपदेश में सिखाया था कि पापों का आरम्भ मन से ही होता है (5:21-48)।

आयत 20. प्रभु ने अपने चेलों के लिए अपनी व्याख्या यह कहते हुए समाप्त की: “**ये ही हैं जो मनुष्य को अशुद्ध करती हैं, परन्तु हाथ बिना धोए भोजन करना मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता।**” असली शुद्धता तो आत्मिक है; क्योंकि इसमें व्यक्ति का मन अर्थात् उसके विचार, भावनाएं, विवेक और इच्छा होती है। यह मूल्यांकन औपचारिक शुद्धता के लिए फरीसियों की मान्यता से बिल्कुल उलट है। बिना हाथ धोए के सम्बन्ध में यीशु का निर्णय पूरी तरह से 15:2 में उसके चेलों के विरुद्ध आरोप लगाने वालों के और मत्ती की प्रस्तुति के अनुसार विचार की एक इकाई बन जाता है (15:1-20)²³

❖❖❖❖ **सबक** ❖❖❖❖

स्वर्ग के रास्ते की रुकावटें (अध्याय 15)

हमें आज के संसार की सोच से बचना और उन बाधाओं से बचना आवश्यक है जो हमें स्वर्ग में पहुंचने से रोक सकती हैं। उन में से कुछ की समीक्षा इस प्रकार है।

1. *मनुष्यों की परम्पराएं* (15:1-9)। हमें मनुष्यों की उन परम्पराओं को नकारना आवश्यक है जो परमेश्वर की इच्छा से मेल नहीं खाती हैं। आराधना और परमेश्वर की सेवा करने में हमारे व्यवहारों का एकमात्र अधिकार उस का वचन है (“परमेश्वर ने कहा है ...”)। यीशु ने फरीसियों और शास्त्रियों से कहा, “पर तुम कहते हो ...” (15:4, 5)। उन्होंने “अपनी परम्परा के कारण परमेश्वर का वचन टाल दिया” (15:6)। यीशु ने यशायाह के शब्दों का इस्तेमाल

करते हुए दोहराया, “वे व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि वे मनुष्यों की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं” (15:9)।

2. झूठी शिक्षा देने वाले (15:12-14)। यीशु ने कहा, “हर पौधा जो मेरे स्वर्गीय पिता ने नहीं लगाया, उखाड़ा जाएगा” (15:13)। उस ने “अंधों के अंधों को रास्ता दिखाने” की बात भी की (15:14)। हमें उन प्रसिद्ध विश्वासों के साथ जिनका पवित्र शास्त्र में कोई आधार नहीं है मेल खाने के लिए बाइबल की शिक्षाओं को छोड़ना नहीं चाहिए।

3. अशुद्ध जीवन (15:10, 11, 17-20)। यीशु ने समझाया, “जो मुंह से निकलता है वही मनुष्य को अशुद्ध नहीं करता” (15:11); “जो कुछ मुंह से निकलता है, वह मन से निकलता है और वही मनुष्य को अशुद्ध करता है” (15:18)। फिर उस ने अशुद्ध करने वाले पापों की सूची दी जो मन से निकलते हैं: “बुरे विचार, हत्या, परस्त्रीगमन, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा” (15:19)।

4. अल्पविश्वास (15:21-28)। अपने विश्वास और अपनी बेटी के लिए प्रेम के कारण कनानी स्त्री ने जिद करके बहुत आशीष पाई। उसके “बड़े” विश्वास के लिए उस की सराहना की गई (15:28)। इसके विपरीत कई यहूदियों ने यीशु की शिक्षा और उसके आश्चर्यकर्मों को नकार दिया था। कई बार उसके अपने चेलों को भी “अल्पविश्वास” होने के कारण डांटा गया था (6:30; 8:26; 14:31; 16:8; 17:20)।

5. जीने का हमारा जटिल ढंग (15:32-39)। लोगों का ध्यान तीन दिन तक खाने या आराम की परवाह किए बिना उसके साथ रहने पर यीशु पर टिका था। वे आत्मिक भोजन के भूखे और प्यासे थे। यीशु के पीछे चलने से हमें कौन रोक सकता है? हमारा ध्यान आसानी से इस संसार पर टिके लक्ष्य और रुचियां हो सकती हैं।

परम्परा (15:1-9)

प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक विल डुरेंट ने एक बार लिखा था, “परम्परा समय की आवाज है, और समय चयन का माध्यम होता है; सचेत मन उनके निर्णय का सम्मान करेगा, क्योंकि बीस सदियों से अधिक ज्ञान केवल जवानों को है।”²⁴

मत्ती 15:1-9 सच्चाई और परम्परा के बीच की पुरानी लड़ाई को दिखाता है। यीशु को ईश्वरीय सच्चाई से लगाव था, परन्तु उसके शत्रुओं का अधिक लगाव मनुष्यों की बनाई उनकी परम्पराओं से था। तौभी वह औपचारिक हाथ धोने को टुकराते हुए हर परम्परा को गलत नहीं कह रहा था। बाइबली रिकॉर्ड के अनुसार, उस ने कम से कम तीन बार फसह में भाग लिया था। सब्ब के दिन “अपनी रीति के अनुसार” वह आराधनालय में जाता था (लूका 4:16)। यरूशलेम में रहते समय वह मन्दिर में जाता था। यह तर्क दिया जा सकता है कि इनमें से कुछ बातों की व्यवस्था में आज्ञा थी और यह सही है, परन्तु वे थी तो धार्मिक परम्पराएं हीं।

हम हर परम्परा को नकार नहीं सकते। वे परम्पराएं जो परमेश्वर की ओर से दी गई हैं, मानी जानी आवश्यक हैं (1 कुरिन्थियों 11:2; 2 थिस्सलुनीकियों 2:15; 3:6)। जो मनुष्यों की बनाई हुई हैं, बेशक कोई भी उन्हें मानने को मजबूर नहीं है, पर उन्हें बनाए रखा जा सकता है। मनुष्यों की परम्पराओं में कुछ मूल्य हो सकता है और उन्हें केवल पुरानी होने के कारण बन्द

नहीं कर दिया जाना चाहिए।

खतरा परम्परा को मानने में नहीं है, बल्कि मनुष्य की बनाई परम्पराओं को नियम बताकर या उन बातों को छोड़ने से है जो परमेश्वर की ओर से दी गई हैं। 15:1-9 में यीशु की बड़ी चिन्ता यह थी कि फरीसियों ने अपनी परम्पराओं को परमेश्वर की आज्ञाओं से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया था। जब भी लोग ऐसा करते हैं, वे पाप के दोषी होते हैं।

हाथ धोना (15:2, 11)

हम आज के कानूनों के विषय में जानते हैं और हमें समझ है कि खाना खाने से पहले अपने हाथ धो लेना समझदारी की बात है। यीशु हाथ धोने को गलत नहीं कह रहा था और न ही वह इस बात का संकेत दे रहा था कि ऐसा न कर पाने के कारण व्यक्ति बीमार नहीं हो सकता। वह एक यहूदी परम्परा की बात कर रहा था जिसमें व्यक्तिगत साफ़ सफ़ाई के बजाय औपचारिक शुद्धता की बात थी।

व्यर्थ आराधना (15:7-9)

परमेश्वर केवल हमारे मुंह से तारीफ़ नहीं बल्कि हमारे मनों को चाहता है (रोमियों 10:9, 10)। वह चाहता है कि हम उससे दिल से प्रेम करें (22:37), दिल से उसके लिए गाएँ (कुलुस्सियों 3:16), दिल से उस की बात मानें (इफिसियों 6:6), और दिल से उसे दान दें (2 कुरिन्थियों 9:7)। “आत्मा और सच्चाई से” आराधना दिल से ही होनी आवश्यक है (यूहन्ना 4:23, 24)।

सच्ची आराधना के उलट, धार्मिक गतिविधि होती है, जिसे यीशु ने “व्यर्थ” कहा। आज कुछ लोगों को लगता है कि हम चाहे जैसे परमेश्वर की आराधना करें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे परमेश्वर को एक परोपकारी व्यक्ति के रूप में देखते हैं जो आराधना के रूप में उसे चढ़ाई गई किसी भी चीज़ को स्वीकार कर लेता है। ऐसा बिल्कुल नहीं है (मलाकी 1:7-9)।

विशेषकर इन कपटियों के द्वारा की गई आराधना “व्यर्थ” (“फिजूल”; “बेकार”) थी क्योंकि वे “मनुष्यों की विधियों को धर्मोपदेश करके सिखाते” थे (15:9)। मनुष्य की बनाई कई शिक्षाएं आज दी जा रही हैं और उन्हें परमेश्वर के वचन से अधिक प्राथमिकता दी जाती है। ऐसी गलत शिक्षा फैलाने वाले लोग व्यर्थ में परमेश्वर की आराधना करते हैं।

आराधना (15:7-9)

“आराधना” “किसी ईश्वर के लिए भक्तिपूर्ण प्रेम और समर्पण ... उत्साहपूर्ण समर्पण; आराधना” है।²⁵ परिभाषा से आराधना परमेश्वर पर केन्द्रित होनी चाहिए न कि मनुष्य पर केन्द्रित। आराधना उस सबके लिए, जो परमेश्वर और उसके पुत्र ने किया और हमारे लिए कर रहे हैं उस की महिमा करना है। यह हमारे लिए यह कहने का एक अवसर है कि “धन्यवाद, हे पिता!” और “धन्यवाद, हे यीशु! तुम हमारे साथ बहुत अच्छे हो।” आराधना हमें अच्छा अहसास कराने के लिए भी नहीं है। बेशक, सच्ची आराधना जो परमेश्वर के लिए हो वह आराधक को आनन्द और शान्ति से भर दे; पर यह तो हमारे आत्मिक समर्पण के अतिरिक्त

फल हैं।

आज बहुत से लोगों का मानना है कि आपका मन साफ है तो आप मण्डली में परमेश्वर की आराधना जैसे भी करें, कोई फर्क नहीं पड़ता। यदि हम आराधना सभाओं में संगीत की तड़क भड़क वाले, देहाती या किसी और किस्म को चाहते हैं तो कोई बात नहीं। यदि वे अकेले, चौराग या क्वायरो को चाहते हैं तो कोई बात नहीं। यदि वे आराधना में गाने के साथ साजों को या ऐसे समूह को चाहते हैं जो आराधना में साज की नकल कर सकें, तो उन्हें लगता है कि सब ठीक है। यदि वे उपदेश दिए जाने की जगह से नाटक दिखाना चाहें, तो वे दिखा देते हैं। आराधना मनोरंजन के लिए नहीं है! यह लोगों को प्रसन्न करने के लिए नहीं बल्कि परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए बनाई गई थी।

परमेश्वर ने सदा से आराधना की एक योजना रखी है। यह सोचना कि आज के लोगों के लिए उस की कोई योजना नहीं है अतार्किक और वचन के विरुद्ध है। परमेश्वर ने स्पष्टतया कैन और हाबिल को बता दिया था कि वह उसे दी जाने वाली भेंट में क्या चाहता है (इब्रानियों 11:4)। हाबिल ने आज्ञा मानी, परन्तु कैन ने अपनी इच्छा के अनुसार भेंट चढ़ाने का फैसला किया। परमेश्वर ने हाबिल की भेंट स्वीकार कर ली और कैन की भेंट नकार दी (उत्पत्ति 4:3-7)। हारून के दो बेटे नदाब और अबीहू, याजक थे (निर्माण 24:9, 10), दोनों ने जब “ऊपरी आग को, जिसकी आज्ञा यहोवा ने नहीं दी थी” चढ़ाया (लैव्यव्यवस्था 10:1, 2) तो स्वर्ग से उतरी आग ने उन्हें “भस्म कर दिया।” परमेश्वर ने साफ बताया था कि धूप की वेदी को जलाने के लिए आग वेदी से ही लेनी थी और कई विद्वान मानते हैं कि उन्होंने ऐसा नहीं किया था। “ऊपरी आग” का अर्थ जो भी हो पर यह मूसा के युग के लिए परमेश्वर की आराधना की योजना का भाग नहीं था। नदाब और अबीहू को आज्ञा न मानने की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। प्रेरितों के स्वीकृत नमूने ध्यान दिलाते हैं कि आरम्भिक कलीसिया परमेश्वर की आराधना किस प्रकार करती थी (देखें प्रेरितों 2:42; 20:7; 1 कुरिन्थियों 11:20-34; 14:15; 16:2)। यदि परमेश्वर की प्रेरणा पाए हुए लोगों की सीधी अगुआई वाली कलीसिया गाकर, प्रार्थना करके, चंदा देकर, और परमेश्वर के वचन में से संदेश सुनकर आराधना करती थी तो हमें उस नमूने को बदलने का अधिकार कौन देता है?

यीशु ने कहा कि “सच्चे भक्त ... [परमेश्वर] की आराधना आत्मा और सच्चाई से” करें (यूहन्ना 4:23, 24)। आराधना “सच्चाई से” करने का अर्थ परमेश्वर के वचन के अनुसार जो की सच्चाई है (यूहन्ना 17:17) करना, और आत्मा से आराधना करने का अर्थ आत्मा से (भीतरी व्यक्ति) आराधना करना है¹⁶ केवल भावपूर्ण आवेग में आकर आराधना करना काफ़ी नहीं है (देखें मलाकी 1:6-14)। हम आत्मा में आराधना कैसे कर सकते हैं? पहले तो हमारे विचार परमेश्वर पर केन्द्रित होने चाहिए। दूसरा, हमें उन सच्चाइयों पर ध्यान लगाना चाहिए जो बताई जा रही हैं। तीसरा, परमेश्वर को प्रसन्न करने की तीव्र इच्छा होनी आवश्यक है। चौथा हमारी आराधना निष्कपट हो। हमें गाने वाली बेहतरीन आवाज या सबसे बढ़िया प्रार्थना न करने के लिए क्षमा किया जा सकता है, परन्तु हम अपने आपको बेवफा नहीं बनने दे सकते।

परमेश्वर बनावटी आराधना, मनमर्जी से आराधना, व्यर्थ आराधना और अपनी आराधना को गलत कहता है। स्पष्टतया हर आराधना परमेश्वर को स्वीकार्य है, आवश्यक नहीं है। परमेश्वर

को अस्वीकार्य आराधना वह होती है जिसमें वह न हो, अर्थात् जब हम अपने ही ठहराए हुए मानकों से आराधना करते हैं, अर्थात् जब हम परमेश्वर को अपना बेहतरीन नहीं देते हैं, जब हम वह देने में नाकाम रहते हैं जिसे वह मानता है, या जब आराधना का ढंग परमेश्वर की आज्ञा पर हावी होता है।

हम किसे सुनें? (15:12-14)

यीशु के चेलों को फरीसियों के विचारों की बहुत अधिक चिन्ता थी, जिन्हें यहूदी लोग बहुत मान देते थे। तौभी यीशु ने अपने चेलों से कहा, “उनको जाने दो; वे अंधे मार्गदर्शक हैं” (15:14)। इन झूठी शिक्षा देने वालों के पीछे चलने का परिणाम अपना विनाश होना था। आज हम में भी झूठी शिक्षा देने वालों के प्रति चौकस होना और जो कुछ दूसरे परमेश्वर के वचन से सिखाते हैं उसे नापना आवश्यक है। मसीही विश्वास का केवल यही मानदण्ड है।

डेविड स्टिवर्ट

टिप्पणियां

¹अन्तियोकुस चतुर्थ (जो अपने आपको “एपिफेनस” कहता है, जिसका अर्थ है “प्रकट देवता”), दूसरी शताब्दी में सिल्युसिड का हाकिम था। फलस्तीन पर विजय पाने वाले के रूप में उसके काम यहूदियों के लिए इतने ठोकर खिलाने वाले थे कि उन्होंने मकाबी विद्रोह कर दिया। ²डेविड हिल, *द गॉस्पल ऑफ मैथ्यू*, द न्यू सेंचुरी बाइबल कमेंट्री (ग्रेंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैस पब्लिशिंग कं., 1972), 250. ³लियोन मौरिस, *द गॉस्पल अर्काईंग टू मैथ्यू*, पिल्लर कमेंट्री (ग्रेंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैस पब्लिशिंग कं., 1992), 389. ⁴मिशनाह *एबथ* 1.1. ⁵वही। ⁶रॉबर्ट एच. माउंस, *मैथ्यू न्यू इंटरनैशनल बिब्लिकल कमेंट्री* (पीबॉडी, मैसाचुएट्स: हैंड्रिक्सन पब्लिशर्स, 1991), 148. ⁷जोसेफस *एन्टिक्विटीज* 13.10.6. ⁸“और कठोर नियम तौरत की शिक्षाओं के बजाय शास्त्रियों की शिक्षाओं पर लागू होता है” (मिशनाह *सन्हेद्रिन* 11.3; देखें टालमुड *अबोदाह जरह* 35ए; *एरुबिन* 21बी)। ⁹मौरिस, 391. ¹⁰मिशनाह *यदाएम* 2.3.

¹¹जॉर्डरवन *इलस्ट्रेशड बाइबल बैकग्राउंड्स कमेंट्री*, अंक 1, *मैथ्यू मार्क लूक*, संपा. क्लिंटन ई. अरनोल्ड (ग्रेंड रैपिड्स, मिशिगन: जॉर्डरवन, 2002), 95 में माइकल जे. विलकिंस, “मैथ्यू।” एक रब्बी का कहना था, “जिस प्रकार से मन्दिर की सेवा के लिए कोई गंदा व्यक्ति अयोग्य होता है, वैसे ही गंदे हाथों वाला व्यक्ति अनुग्रह की बात कहने के अयोग्य होता है” (टालमुड *बेराक्रोथ* 53बी)। ¹²टालमुड *किदुशिन* 31बी; जरूसलेम टालमुड *किदुशिन* 1.7. ¹³जरूसलेम टालमुड *किदुशिन* 1.7. ¹⁴मिशनाह *नेदारिम* 5.6. ¹⁵विलकिंस, 96. ¹⁶मिशनाह *नेदारिम* 9.1. ¹⁷हिल, 251. ¹⁸विलियम हैंड्रिक्सन, *न्यू टैस्टामेंट कमेंट्री: एक्सपोजिशन ऑफ द गॉस्पल अर्काईंग टू मैथ्यू*, (ग्रेंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1973), 614. ¹⁹क्रेग एस. कीनर, *ए कमेंट्री ऑन दि गॉस्पल अर्काईंग टू मैथ्यू* (ग्रेंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैस पब्लिशिंग कं., 1999), 412. ²⁰जैक पी. लुईस, *ए कमेंट्री ऑन द गॉस्पल अर्काईंग टू मैथ्यू*, पार्ट 2, द लिविंग वर्ड कमेंट्री (आस्टिन, टैक्सस: स्वीट पब्लिशिंग कं., 1976), 25.

²¹मौरिस, 396-97. ²²“परस्त्रीगामिता” को “व्यभिचार” से मिला दिया जाता है और “निन्दा” को झूठी गवाही देने वाले कहा जाता है। ²³हिल, 252. ²⁴विल डूरंट, *द स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन*, अंक 3, *सीज़र एंड क्राइस्ट* (न्यू यार्क: साइमन एंड शुस्तर, 1944, 1972), 295. ²⁵*अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी*, चौथा संस्क., (2001), एस. बी. “वर्शिप।” ²⁶यूहन्ना 4 का संदर्भ जोर देता है कि असली आराधना किसी विशेष स्थान (यरूसलेम, या गिराजिन पहाड़) से नहीं बल्कि व्यक्ति यीशु मसीह के द्वारा होती है। सच है कि आत्मिक आराधना केवल उसी के द्वारा सम्भव है (यूहन्ना 14:6, 13, 14; 16:23, 24; इफिसियों 5:19, 20; कुलुस्सियों 3:16, 17)।